IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

Impact Factor: 6.252

Volume 2, Issue 1, June 2022

vk/kk xk¡o ¼1966½ esa Hkkjrh; lekt

M,- mn;Hkku ;kno

vflLVsUV izksQslj] fgUnh

राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़

''राही मासूम रज़ा'' अकेले ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य के साथ–साथ सिनेमा के क्षेत्र में, भी अभूतपूर्व सफलता पाई। उनके सरोकार बहुत बड़े रहे हैं। जीवन भर उन्होंने भारतीयता को ध्यान में रखकर लेखन किया ''राही भारत की परम्परागत साझा संस्कृति और विरासत के प्रबल समर्थक थे। वे धर्म की राजनीति करने वालों के सदैव विरोधी रहे। भारतीयता को आधार बना कर ही उन्होंने 'आधा गाँव' लिखा।''[1]

''आधा गाँव' देश–विभाजन, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण पड़ाव है। 'आधा गाँव' देश–विभाजन की वास्तविकता को उद्घाटित करता है और उसकी त्रासदी चित्रित करता है। यह उपन्यास वह विमर्श रखता है जिसमें देश–विभाजन को धार्मिक आधार प्रदान किया गया। साम्प्रदायकिता के कारकों को पहचानने का प्रयास करता है। तथा हिन्दू–मुस्लिम सह–सम्बन्ध को भी व्याख्यायित करता है। आधा गाँव उस सामासिक संस्कृति का रक्षक है जो भारतीयता की परिचारक है। ''समझना होगा असली मुद्दा मंदिर–मस्जिद का नहीं आर्थिक है वे शक्तियों जो जीने के साधन छीन रही हैं और खंजर या त्रिशूल पकड़ा रही हैं, वे जिन्दगी की जड़ो में विष डाल रही हैं। वे सामाजिक संस्कृति के इतिहास और भूगोल को मिटाने पर आमादा हैं। ''आधा गाँव इन शक्तियों को रोकने और मिटाने का आह्वान है। नयी अर्थव्यवस्था या नई राजनीतिक या जीवन जिसमें ए शक्तियाँ पराजित हो सकें, वही आधा गाँव का सन्देश है। इसी सन्देश में आधा गाँव का पूरा राजनीतिक सौन्दर्य निहित है।''[2]

'आधा गाँव में भारतीय समाज का एक ऐसा परम्परागत गाँव है 'गँगौली', जिसमें सैयद लोग जमींदार हैं और अहीर है, भर एवं चमार उनकी प्रजा हैं। सामंती संरचना वाला यह गाँव साम्प्रदायिक सौहार्द का ज्वलन्त उदाहरण है। लोग इस तरह घुल मिलकर रहते हैं कि लोगों के बीच साम्प्रदायिकता लेश मात्र भी नहीं है। शिआ मुसलामानों का प्रसिद्व त्यौहार मुहर्रम– जिसमें गंगौली आबाद हो जाया करता था। ''ताजिए के पीछे हजार–पाँच सौ की भीड़ होती थी। औरते बच्चों को बड़े ताजिए के नीचे से निकालती मन्नते माँगती। जारी पढ़ती और शरबत चढ़ातीं। ये औरतें सैदानियाँ नहीं हुआ करती थीं। .... ये तो गाँव की राकिने, जुलाहिने, अहीरनें एवं चमाइनें होती थीं सोज ख्वानों के आगे अट्ठबन्द अहीरों का एक गोल होता।''[3] यह भीड़ हिन्दुओं मुसलमानों के आपसी लगाव तथा रहन सहन की वजह से होता था। यही नहीं गंगौली के माहौल में 'जयबजरंग बली' और 'जय इमाम साहब' के नारे एक साथ लगते थे। और जब लाठियाँ चलती थीं तो चलाने वालों में फुन्नन मियाँ भी हैं और गया अहीर भी– ''लट्ठ बन्द अहीरों चमारों और भरों के अखाड़ेवालों ने 'या हुसैन' का नारा मारकर उनकी लाठियों को अपनी लाठियों पर रोका और फिर बड़े ताजिए के आगे– आगे चलने वाले अहीर लठ्ठबन्द, जो आगे बढ़ गए थे, लौट आए।''[4]

---

1. देवेन्द्र कुमार गुप्त– राही मासूम रजा और भारतीयता, पृ0– 445
(अभिनव कदम– राही मासूम रजा विशेषांक 6–7)
2. प्रदीप सक्सेना– आधा गाँवः सामाजिक संस्कृति की वास्तविक शक्ति– पृ0– 275 (भविनव कदम–राही मासूम रजा विशेषांक 6–7)
3. राही मासूम रजा– आधा गाँव पृ0– 66
4. राही मासूम रजा– आधा गाँव पृ0– 71

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 1, June 2022

राही मासूम रजा पूरी तरह से यह दिखाना चाहते हैं कि मुहर्रम का त्यौहार सिर्फ मुसलमानों का त्यौहार नहीं है बल्कि पूरी तरह भारतीय है। राही जी ने इस त्यौहार को 'एक भारतीय त्योहार' की संज्ञा दी है वैसे भी भारत आकर यह त्यौहार सात दिनों की जगह दस दिनों का हो गया। शिआ मुसलमानों की मान्यता है कि मुहर्रम के इन दिनों में इमाम साहब भारत आ जाते हैं। अतः यह त्यौहार भारतीय है न कि किसी सम्प्रदाय विशेष का। यह उपन्यास ऐसा है कि जिसमें हिन्दू– मुसलमान सौहार्द कायम रहता है तथा प्रवाहित होता रहता है।

राही मासूम रज़ा यह भी दिखाना चाहते हैं कि जो आम मुसलमान तथा आम हिन्दू है वह साथ–साथ रहता है तथा उसकी आपसी समझ का भी विकास हुआ है। यहाँ तक कि जमींदारों के यहाँ हिन्दू– मुसलमान का भाव तक नहीं है फुन्नन मिआँ वारिखपुर के ठाकुर कुँवरपाल सिंह के अच्छे मित्र हैं। दोनों एक साथ एक ही अखाड़े में लकड़ी चलाना सीखते हैं। दोनों बराबरी के योद्वा थे। ''ठाकुर साहब के लड़कों और पोतों ने उन्हें घेर लिया। अन्दर से घर का गुड़ आया जिससे इलायची की तेज खुशबू आ रही थी और जो घर के घी में तैयार किया गया था। फुन्नन मियाँ ने पानी पिया।''[5]

जहाँ तक जमींदारी का सवाल है तो जमींदार को अपनी प्रजा के लगाव साम्प्रदायिकता की भावना से ऊपर है। दोनों के बीच लगाव को इसी बात से समझा जा सकता है कि जमींदार अपने प्रजा को कभी हिन्दू या मुसलमान न समझकर प्रजा समझता था। 'ठाकुर जयपाल सिंह' बारिखपुर में हिन्दुओं की रैली एवं प्रवचन की व्यवस्था करते हैं लेकिन जब उन्हें लगता है कि बात साम्प्रदायिक होती जा रही है तो उन्हें अपना जमींदारी कर्तव्य याद आता है– ''सलीमपुर के खान साहब पर धावा बोलना और बात थी और बारिखपुर के हज्जामों जुलाहों और दो–एक पठानों को कत्ल करना कुछ और इन लोगों ने उनका क्या बिगाड़ा था। ये तो हमेशा उन्हीं के साथ जीते और मरते चले आ रहे थे।''[6] वे गाँव छोड़कर जाने में अपना अपमान महसूस करते थे ''गाँव से जाए के नाम लेबा लोग त माई चोद के ना रख देइब। हई देखा भुसड़ियावालन का! जात बाड़न लोग मऊ मुबारक पुर गॉड़ मराये।''[7]

'आधा गाँव' की सामंती व्यवस्था को यदि देखा जाय तो वे पक्ष भी उभर कर सामने आते है जब उच्च वर्ग के हिन्दू मुसलमानों एवं दलितों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार करते हैं, तो उस समय मुसलमान ऐसा हिन्दुओं के साथ करते है। रोजमर्रे के व्यवहार में सामाजिक मान्यताओं का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। ''गुलाबी जान कट्टर मुसलमान थी। ठाकुर साहब के कमरे से जाकर वह फौरन नहाती थी और अल्लाह मियाँ से माफी माँगती थी कि पेट की वजह से उसे एक काफिर के साथ सोना पड़ता है।''[8] समीउद्दीन खाँ भी कट्टर मुसलमान थे ''वे हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते थे और ठाकुर साहब मुसलमानों की छुई चीज को हाथ नहीं लगाते थे।''[9] तात्पर्य यह है कि धार्मिक रूप से अलग–अलग रहने के बाद भी सह– अस्तित्व पर जीवन जी रहे थे। इनके बीच जो छूआछूत है वह साम्प्रदायिकता की भावना से चालित नहीं है बल्कि वह परम्पराओं का निर्वहन मात्र है उसके पीछे केवल धार्मिक मान्यताओं का पृष्ठपेषण ही हो रहा है। वीरेन्द्र यादव बताते हैं ''आधा गाँव के औपन्यासिक कथ्य में अन्तर्निहित यह तथ्य भी विचारणीय है कि भारतीय समाज के जिस बहुलवाद व मेल जोल की संस्कृति को अक्सर महिमामंडित किया जाता है, वह सामन्ती सामाजिक संरचना का अनिवार्य परिणाम है या भारतीय संस्कृति के उदारतावाद की देन''[10]

5. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव, पृ0–149
6. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव, पृ0– 181–82
7. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव, पृ0– 283
8. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव, पृ0– 70
9. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव, पृ0– 74
10. विरेन्द्र यादव– अभिनव कदम पृ0– 325 (अंक–6–7)

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 1, June 2022

भारतीय संस्कृति के प्रश्न पर यदि आधा गाँव को देखा जाय तो वह पूरी तरह से भारतीय परम्परा एवं हिन्दू– मुस्लिम सह–अस्तित्व को दिखाता है। राही जी जब उपन्यास आरम्भ करते हैं। तब गंगा के पवित्र रूप की चर्चा करते हैं गाजीपुर के बारे में लिखते हैं ''नाम का व्यक्तित्व से कोई अटूट रिश्ता नहीं होता शायद, क्योंकि यदि ऐसा होता तो गाजीपुर बदलकर गादिपुरी हो जाना चाहिए था, या फिर कम से कम इतना होता कि हारने वाले ठाकुर, ब्राहमण कायस्थ, अहीर, भर और चमार अपने को गादिपुरी कहते और जीतने वाले सैयद, शेख और पठान अपने को गाजीपुरी परन्तु ऐसा नही हुआ। सब गाजीपुरी है और अगर शहर का नाम न बदला गया होता तो सब गादिपुरी होते।''[11]

हिन्दू और मुसलमान वर्षो से साथ–साथ रहते चले आए हैं जिसकी वजह से उनके अपने आपसी सम्बन्ध परम्परागत मान्यताओं के साथ–साथ घुल–मिल गए हैं फुन्नन मियाँ मुसलमान हैं लेकिन हिन्दुओं की धन एवं समृद्वि की देवी लक्ष्मी के प्रति श्रद्वा रखते हैं। दरोगा ने जब रात को छापा मारा तो– ''फुन्नन मियॉ हमेशा की तरह जुआ खेल रहे थे, और हमेशा की तरह शगुन के लिए लक्ष्मी की उस मूर्ति के नीचे बैठे थे, जो नैनसुख कलवार की दुकान में दीवार पर लगी हुई गणेश की मूर्ति की तरफ देखा करती थी।''[12] दूसरा एक रूप सौहार्द का यह भी है कि फुन्नन मियॉ ठाकुद कुँवरपाल सिंह को खो कर व्यथित हैं उनकी नमाज की दुआओं में ठाकुर की मुक्ति कामना है– ''पाक परवर–दिगार! मुहम्मदों आले मुहम्मद के सदके में ठाकुर कुँवरपाल सिंह को बख्श दे''[13] यह एक दूसरे के दुख सुख में भी लोग शामिल होते थे– ''रजिये का जनाजा निकला तो ताबूत फुन्नन मिआ, ठाकुर पृथ्वीपाल सिंह, झिगुरिया और अनवारूल हसन राकी के कन्धों पर था ठाकुर कुँवरपाल सिंह का सारा परिवार जनाने के साथ''[14]

सामासिक संस्कृति की यही सब पहचान ही 'आधा गाँव' के हिन्दू एवं मुसलमान को साथ–साथ दिखाती है। मुहर्रम मुसलमानों का एक शोक आख्यान है परन्तु वह केवल मुसलमानों का ही नहीं रहता, अपितु समग्र रूप से भारतीय जनता का शोक आख्यान है। मुहर्रम के नौ दिनो में शिआ मुसलमानों की मान्यता है कि इमाम हुसैन भारत चले आते हैं। मान्यता यह भी है कि कर्बला के युद्व में भारतीय ब्राहमणों का एक दल इमाम हुसैन के सहायतार्थ गया था। ये मान्यताएँ मुहर्रम को भारतीय त्यौहार बनाती हैं। इस प्रकार यदि देखा जाय तो मुहर्रम एक सम्पूर्ण भारत का त्यौहार बनकर उभरता है। यह एक साझी संस्कृति की मिसाल है। 'आधा गाँव' के गंगौली के जमीदारों की हुकूमत लट्ठ बन्द, अहीरों, चमारों व भरों के बल पर ही थी। गया अहीर तो हम्माद मियाँ की लाठी ही था। कोमिला चमार तो अपने हकीम साहब के लिए फर्जी मुकदमें में नामजद होकर फाँसी की सजा तक पा गया। गया अहीर, कोमिला चमार व हुकिरिया जैसे लोग सामंती समाज की लाठी व गिनी पिग दोनों ही भूमिकाओं का निर्वाह करते थे। दर असल सामंती समाज की संरचना में निचले पाये के ये लोग कुलीन सामंतो की विलासिता का आधार तैयार करते थे। दर असल यह हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द का वह उच्च मध्यवर्गीय अभिजात्य विमर्श है जहाँ वर्ग, वर्ण, और जाति के अंतर्विरोध विलपित हो जाते हैं। राही मासूम रज़ा इन अंतर्विरोधों को सामाजिक व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तैयार करते हैं।

साम्प्रदायिक सौहार्द के विमर्श के साथ–साथ राही मासूम रजा यह दिखाते हैं कि किस प्रकार साम्प्रदायकिता का विमर्श गंगौली में भी दिखता है। हकीम अली कबीर कहते हैं ''हम ई देख रहे हैं कि ई मुलुक में हिन्दू मुसलमान की तादात बढ़ती जा रही है। बढतिए जा रही है भाई''[15] यह साम्प्रदायिक विमर्श उस समय अधिक बढ़ता जा रहा था जब पाकिस्तान की माँग उठती है।

---

[11]. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव पृ0– 4
[12]. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव पृ0– 75
[13]. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव पृ0– 156
[14]. राही मासूम रजा– आधाग गाँव पृ0– 167
[15]. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव– पृ0– 225

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 1, June 2022

यहाँ ध्यान देने की बात यह है, कि पाकिस्तान का विमर्श गंगौली के सौहार्दपूर्ण वातावरण को साम्प्रदायिक बनाता है। जो लोग पाकिस्तान के विमर्श से अवगत हैं वे इसका विरोध करते हैं। 'आधा गाँव' रचनात्मक तरीके से साम्प्रदायिक विमर्श की वास्तविकता को समझता है। ग्रामीण वर्ग साम्प्रदायिक विमर्श से आश्चर्यचकित है। ''आप जान का डर पैदा कर रहें हैं। डर की यह फसल हमीं को काटनी पड़ेगी।''[16]

यह स्वीकार करना होगा कि विभाजन और भारतीय मुसलमान के प्रसंग में राही मासूम रज़ा 'आधा गाँव' में जो पूरा विमर्श पैदा करते हैं, वह एक उपन्यास भर न होकर भारतीय मुसलमान का सामाजिक राजनीतिक बयान है। जो पाकिस्तान के रथ पर आरूढ़ होने के बजाय उसके पहियों से लहू लुहान हुआ था। यह वही भारतीय मुसलमान था जिसने विभाजन से मात्र दस वर्ष पूर्व 1937 के प्रांतीय असेम्बली चुनावों में वोट देकर मुस्लिम लीग को करारी मात दी थी। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस चुनाव में सीमित मताधिकार ही प्राप्त था। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि विभाजन और पाकिस्तान विमर्श ने किस प्रकार हिन्दू मुस्लिम सौहार्द को छीन रहा था।

'आधा गाँव' यह भी दिखाता है कि आम मुसलमान पाकिस्तान इसलिए नहीं जाता कि वह पाकिस्तान से लगाव रखता है बल्कि इसलिए जाता है कि वह आजीविका के साधन वहाँ देखता है। आम मुसलमानों के लिए धर्म से बड़ा सवाल रोजी–रोटी का है। फुन्नन मियाँ का यह कथन ''ई मत सोचिहो की उ पाकिस्तान यह मारे गए हैं देहली के इमाम बाड़े पर सिख सब कब्जा कर लिहिन है कि और अमृतसर की मसजिदन में गुरूद्वारा खुल गया है। इह सब त उही साल हो गया रहा, जेह साल पाकिस्तान बना रहा। तो ऊ चले गए होते तुरन्त? अब यह मारे गए हैं कि गंगौली में रहे के कौनो सहारा न रह गया रहा।''[17]

विभाजन मुसलमान लोगों के जिन्दगी में पर्याप्त उथल–पुथल लाता है। गंगौली वासी जमीदारी उन्मूलन, आर्थिक बदहाली और आत्मीय लोगों के विछोह के लिए छोटी बड़ी बातों पर पाकिस्तान को दोषी ठहराती है, बद्दुआएँ देती हैं। हकीम साहब पाकिस्तान के प्रभाव को निम्न शब्दों में व्यक्त करते हैं ''ई पाकिस्तान त हिन्दू– मुसलमान को अलग करे को बना रहा। बाकी हम तो इ देख रहे हैं कि ई मियाँ बीबी, बाप–बेटा और भाई–बहिन को अलग कर रहा। कुद्दन हुआँ चले गये त ऊ मुसलमान हैं अउर हम हियाँ रह गये त का हम, खुदा न करे, हिन्दू हो गये।''[18]

समय के बदलने के साथ–साथ ही हिन्दू– मुसलमानों के सम्बन्ध बदलने लगते हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन का समय राष्ट्रीय उथल–पुथल भी सामाजिक संरचना को प्रभावित करता है। स्वतंत्रता आन्दोलन की लहर निचले वर्गों में उनकी चेतना में बराबरी व सह–अस्तित्व को बोध कराती है। दलित हिन्दुओं में भी स्वतंत्रता की चेतना का वाहक परशुराम हैं वह बदले राजनीतिक परिदृश्य में मियाँ लोगों के समकक्ष बैठने लगा था और उसकी जाति के लोग न सिर्फ उसका नाम आदर से लेने लगे थे अपितु गौरवान्वित भी महसूस कर रहे थे। ''राही स्वतंत्रता का सूर्य उगने के अवसर पर जमींदारी व्यवस्था, ऊँची जाति के हिन्दू और मुसलमानो में आए परिवर्तन का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। उन्हें आर्थिक प्रश्नों एवं सामाजिक सम्मान की भावना से जोड़ते है।''[19]

राही मासूम रज़ा ने पाकिस्तान व इस्लाम के विमर्श के साथ–साथ उर्दू भाषा के मिथक को रोजमर्रा के जीवन में गूँथकर जिस सहजता के साथ उद्घाटित करते हैं, वह अत्यन्त दिलचस्प और प्रासंगिक है। राही यह बताना चाहते हैं कि आम मुसलमान उर्दू न बोलकर वह भोजपुरी मिश्रित उर्दू बोलता है। जबकि उर्दू को मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रचारित किया जाता है। वह गंगौली के मियाँ लोगों की भाषा नहीं है। वे दिखाते हैं कि स्वतंत्रता के बाद युवा पीढ़ी हिन्दी को उर्दू की जगह

---

16. राही मासूम रज़ा– आधा गाँव पृ0– 255
17. राही मासूम रजा– आधा गाँव पृ0–345
18. राही मासूम रजा– आधा गाँव पृ0– 292
19. कुँवर पाल सिंह, शताब्दी कथा साहित्य, पृ0 393

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 1, June 2022

प्रयोग कर रही है। नौहों एवं मरसियों की लिपि बदल गई है। राही मानते थे कि उर्दू और हिन्दी दो लिपियों मे लिखी जाने वाली एक ही भाषा है। ''उर्दू को लेकर राही सर्व प्रथम इस धारणा का खण्डन करते हैं कि उर्दू भारत के सभी मुसलमानों की भाषा थी। उर्दू कुलीन व सुरक्षित मुसलमानों द्वारा बोली जाती थी ना कि व्यापक मुस्लिम जन द्वारा।''[20] तन्नू उर्दू के मुसलमानीकरण पर प्रश्न करता है। ''आप लोगों ने तो उर्दू को मुसलमान कर दिया है। जो जबान इस वक्त में बोल रहा हूँ मेरी मादरी जबान नहीं है।'[21]

'आधा गाँव' का भाषिक विमर्श भी हिन्दू– मुस्लिम के सौहार्द को दिखाता है वह यह दिखाता है किस प्रकार एक साथ रहने वाले लोग आम बोल–चाल की भाषा का प्रयोग करने लगते है जिसे सम्प्रदाय के आधार पर नही बाँटा जा सकता। उपन्यास के सभी पात्र 'भोजपुरी उर्दू' बोलते है। उनका भोजपुरी उर्दू बोलना यह दिखाता है कि वे एक संस्कृति का निर्माण कर रहे हैं उसे बॉट नहीं रहे हैं। इस प्रकार हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द की दृष्टि से भाषा ने भी एक साझी संस्कृति की पहचान दी है ''एक निश्चित भू–भाग में रहने वाली दोनों कौमों की भाषा एक है, सामान्य बोलचाल की भाषा की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं हैं। लगभग तमाम पात्रों से एक ही भाषा बुलवाकर और यह दिखलाकर कि हिन्दी –उर्दू का झगड़ा तो साम्प्रदायिक ताकतें खड़ा करती है, राही ने जातीयता और भाषा के मामले में वस्तुनिष्ठ और प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है।''[22]

इस प्रकार हिन्दू– मुस्लिम सौहार्द की दृष्टि से यह उपन्यास कई आयाम प्रस्तुत करता है। साझी संस्कृति, सामाजिक एकरसता का भाव, एक तहजीब का विकास, तथा बोलचाल की भाषा यह दिखाते है कि सौहार्द के कई आयाम है। जिसे राही मासूम रजा ने इस उपन्यास में बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है।

---

[20]. वीरेन्द्र यादव– अभिनव कदम – पृ0– 317
[21]. राही मासूम रजा– आधा गाँव पृ0– 255
[22]. द्वारिका प्रसाद चारूमित्र, आचंलिकता के समस्या, हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद, सं0 निर्मला जैन, नित्यानंद तिवारी, पृ0– 60